परंपरा एवं ज्ञान

अच्युत पटवर्धन (अ.) : वर्ष १६२३ - १६२४ के दौरान मैं थियोसोफिकल सोसायटी के स्व-प्रशिक्षण-समूह में था। यह एक ऐसा समूह था जिसमें विवेक तथा प्रेम की पारंपरिक पद्धति पर आधारित समझ के अनुसार स्वयं को प्रशिक्षित किया जाता था। एक बदलाव तब आया जब आपने कहा : हमें समस्त संगठनों, सारे अनुशासनों को छोड़ देना होगा।

'ऐट द फीट ऑव द मास्टर' में 'मन पर संयम' को शम, तथा 'शरीर पर संयम' को दम कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पारंपरिक-पद्धति में शम की उपेक्षा की गई है, दम अर्थात शरीर पर संयम करने की तुलना में इसे कम महत्त्व दिया गया है। जबकि ध्यान देने योग्य बात यह है कि शांति, जो कि आंतरिक निश्चलता का शब्द-प्रतीक है, व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी, शम शब्द का ही भूतकालिक कृदंत-रूप है। तात्पर्य यह है कि यदि शम को नहीं समझा गया तो शांति को भी नहीं समझा जा सकता।

जे. कृष्णमूर्ति (कृ.) : आप 'साधना' शब्द का क्या अर्थ लेते हैं?

जनार्दन पटवर्धन (ज.) : साधना का अभ्यास अनुशासन लाने के लिए किया जाता है।

अ. : शम की, अर्थात उस प्रक्रिया की, जिसके माध्यम से मन में उठने वाले आवेग शांत हो जाते हैं, आप उपेक्षा कर देते हैं।

कृ. : प्रक्रिया से आपका क्या मतलब है? प्रक्रिया किसी गतिविधि की ओर इंगित करती है - यहां से वहां की तरफ; प्रक्रिया समय से बंधी होती है।

अ. : मन के तौर-तरीकों के निरीक्षण में समय अवश्य लगता है।

कृ. : किसी प्रक्रिया में, अनुशासन लाने में, समय लगता है, तथा कहीं पहुंचने के लिए भी समय की ज़रूरत होती है। ये सभी काल तथा स्थान पर अवलंबित हैं। यहां से वहां तक की गतिविधि स्थान की उपस्थिति दर्शाती है, और उस स्थान अर्थात दूरी को, किसी तय समय में ही पार किया जाता है।

ज. : रमण के अनुसार यह मार्ग रहित है, 'प्रक्रिया' से, काल से, मुक्त है।

अ. : जब हमें यह बोध होता है कि इच्छाओं के उदय तथा उनकी समाप्ति को दबा दिया जाना उचित नहीं है, तो वह बोध भी एक प्रक्रिया है और प्रक्रिया काल के ही अंतर्गत होती है।

कृ. : जब हम कहते हैं कि हम समय में जीते हैं तो हमारे इस कथन का क्या मतलब होता है? समय में जीने का तात्पर्य क्या है?

अ. : मन बीते कल, आज एवं भावी-कल का अभ्यस्त है।

कृ. : मन क्रमिक समय में भी जीता है। मैं इस समय यहां आता हूं। क्या समय का अन्य भी कोई रूप है?

अ. : मानसिक तल पर भी समय होता है जिसे मन निर्मित करता है।

कृ. : 'मन के द्वारा निर्मित समय' से आपका क्या अभिप्राय है?

अ. : सुख को अधिक समय तक टिकाए रखने का मन के पास अपना एक तरीका होता है। क्रमिक समय में होने वाली मेरी गतिविधि मन से प्रभावित होती है।

कृ. : क्या है यह मन?

अ. : याददाश्त।

कृ. : याददाश्त क्या है? कल आप बैंगलोर में थे और आज आप मद्रास में हैं। आपको बैंगलोर याद है। विगत अनुभव की स्मृति ही याददाश्त है। अनुभव ने अपना एक चिह्न छोड़ा हालांकि यहां इसका महत्व नहीं है कि यह सुखद था या पीड़ादायक। अनुभव ने अपना निशान क्यों छोड़ा? और वह पदार्थ क्या है जिस पर अनुभव अपना चिह्न अंकित कर देता है।

अ. : सेंसर (नियामक) पर।

कृ. : सेंसर से आपका क्या मतलब है? कल के अनुभव ने निशान छोड़ा है। इसने यह निशान किस पर छोड़ा है?

ज. : मन पर जो कि चेतना है।

कृ. : किस चेतना पर? चेतना की अंतर्वस्तु ही चेतना है; अंतर्वस्तु के अभाव में चेतना जैसा कुछ नहीं है। वे दोनों अलग नहीं हैं। पता लगाइये कि स्मृति अपना चिह्न किस पर अंकित करती है?

अ. : मन-मस्तिष्क के उस हिस्से पर, जो पिछले अवशेष को ढोता है।

कृ. : चिह्न मस्तिष्क की कोशिकाओं पर छूटते हैं। देखिए, होता यूं है कि स्मृति को धारण करने वाली मस्तिष्कीय कोशिकाओं पर अपूर्ण अनुभव एक चिह्न अंकित कर देता है। स्मृति पदार्थ है, मस्तिष्क की कोशिकाएं भी पदार्थ हैं, इसलिए हर अपूर्ण अनुभव कोई निशान उन पर छोड़ता है, जो कि जानकारी बन जाता है। मस्तिष्क जो कि संचित जानकारी है सूचना प्राप्त करता है, और यह सूचना जानकारी ही है। इसका बोझ मन को मंद बना देता है।

अ. : किसी चुनौती से कैसे निपटा जाता है?

कृ. : चुनौती से निपटना क्या है? यदि आप विगत सूचना के अनुसार प्रत्युत्तर देते हैं, तो आप यह नहीं जान पाते कि नयी समस्या का सामना कैसे करें। अनुभव मस्तिष्क की कोशिकाओं पर स्मृति के रूप में अवशेष छोड़ता है जो जानकारी का भंडारघर बन जाता है। जानकारी अतीत है। इस प्रकार से समय अर्थात अतीत के द्वारा निर्मित मस्तिष्क, विगत के अवशेषों के अनुसार कार्य करता है, प्रत्यत्तर देता है तथा संचालित होता है और इसीलिए जानकारी से भरा मन मुक्त मन नहीं होता।

ज. : क्योंकि इसके द्वारा दिया जानेवाला प्रत्युत्तर ज्ञात से ही आता है।

अ. : एक स्तर पर जानकारी भी अपरिहार्य होती है।

कृ. : बिलकुल, हमारे जीवन का आधा हिस्सा वही है। हम देखते हैं कि मस्तिष्क जो कि लाखों वर्षों के दौरान बन पाया है, वर्तमान तथा अतीत के अनुभवों के साथ जीता है। वंशानुगत, पारिवारिक और व्यक्तिगत सभी रूपों में अतीत इस पर हावी रहता है। इसी को हम प्रगति कहते हैं। बैलगाड़ी से जेट-विमान तक की तकनीकी

प्रगति तो हमें पता ही है। मस्तिष्क कहता है कि वह अपनी स्मृतियों के भीतर ही कार्यशील रह सकता है; और विचार कहता है कि वह स्मृतियों के कैदखाने से बाहर निकलना चाहता है। अतः विचार उस भविष्य में सरक जाता है जिसे मोक्ष कहते हैं। अतः मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण भी विचार की ही एक गतिविधि है। देखिए, हम कर क्या रहे हैं!

ज. : हम बैलगाड़ी और जेट के ही सिद्धांत को यहां पर भी लागू करते हैं अर्थात मन प्राप्त किए गए ज्ञान के द्वारा अनुशासन के माध्यम से इच्छाओं को नियंत्रित करते हुए मुक्ति तक जा सकता है।

कृ. : मुझे लगता है कि अभी भी हमें यह साफ नहीं हो सका है। हम जानकारी को एकत्रित करते हैं, जो कि अनुभव है, और स्मृति है, और इसी के माध्यम से हम बाहर निकलने का रास्ता तलाशते हैं।

अ. : जी।

कृ. : पारंपरिक पद्धति के मतानुसार मुक्ति ज्ञान के माध्यम से होती है। किन्तु क्या जानकारी मुक्ति ला सकती है? यदि ऐसा हो, तो अनुशासन, नियंत्रण, उदात्तीकरण, दमन इत्यादि सभी आवश्यक हैं। क्योंकि हमें बस यही सब तो मालूम है। परंपरा अर्थात रूढ़ि यही है। रूढ़ि का मतलब होता है लादकर आगे ले जाना।

अ. : मुझे स्पष्ट दिखलाई देता है कि ऐसा संभव नहीं है फिर भी हम रुकते क्यों नहीं?

कृ. : मैं साफ देखता हूं कि ज्ञान, जो कि शताब्दियों का संग्रह है, एक कैदखाना है। इसे, मैं एक तथ्य की तरह स्पष्टतापूर्वक देखता हूं। यह कोई मान्यता या सिद्धांत नहीं है, लेकिन मन फिर भी इसे छोड़ नहीं पाता।

अ. : मेरी समझ शाब्दिक है, यह शब्दों पर आधारित है।

कृ. : शब्दों पर आधारित है? आपने मुझ पर वार किया। मुझे शारीरिक पीड़ा पहुंची। पीड़ा की स्मृति अवश्य ही शब्दों के रूप में रहती है लेकिन पीड़ा कोई शाब्दिक चीज नहीं होती। मन ने पीड़ा को शब्दों में क्यों ढाल दिया? सर, इसका निरीक्षण करें।

अ. : शब्दों में ढाला संप्रेषण की खातिर।

कृ. : इसे देखें। आपने मुझे चोट पहुंचाई, मुझे पीड़ा हुई। यह शारीरिक तथ्य है। बाद में मैं इसे याद करता हूं। याददाश्त शब्दगत होती है। तथ्य को शब्दों में क्यों बदला गया?

ज. : ताकि उसे सातत्य दिया जा सके।

कृ. : यह पीड़ा को सातत्य देने के लिए किया जाता है, या उस मनुष्य को सातत्य देने के लिए जिसने मुझे चोट पहुंचाई?

अ. : उसे इसके नतीजे भुगतने होंगे।

ज. : इससे उस व्यक्ति को निरंतरता मिलती है, जो कि पीड़ा झेलता है।

कृ. : देखिए; आपने मुझे चोट पहुंचाई, शारीरिक पीड़ा हुई। बस मैं यहीं इसे खत्म क्यों नहीं करता? मस्तिष्क पीड़ा को शब्दों में व्यक्त करते हुए यह क्यों कहता है

– उसने मुझे मारा क्यों? क्योंकि यह भी पलट कर मारना चाहता है। यदि इसने ऐसा न चाहा होता तो यह यूं भी कह सकता था कि उसने मुझे मारा – पूर्ण विराम। किन्तु मस्तिष्क न सिर्फ शारीरिक पीड़ा को याद रखता है बल्कि उस व्यक्ति को भी, जिसने पीड़ा पहुंचाई है, और यही मानसिक चिह्न बन जाता है।

रा. : इसे याद कौन रखता है?

कृ. : मस्तिष्क की कोशिकाएं।

अ. : 'स्व'-प्रक्रिया।

ज. : कोशिकाओं में जिसे अंकित किया जा रहा है, वह है उस मनुष्य की प्रतिमा जिसने मुझे मारा।

कृ. : मैं उस मनुष्य को क्यों याद रखता हूं ?

ज. : यदि मैं उसे माफ भी कर दूं तो भी वही बात है।

कृ. : देखिए होता यह है जैसे ही आपने मुझे मारा, मैं तथ्य को शब्द प्रदान कर देता हूं। 'स्व' कहता है : उसने मुझे मारा, वह ऐसा कैसे कर सकता है? मैंने क्या किया है? ये सभी शब्दों की ही तरंगें होती हैं।

निर्वाण की पारंपरिक पद्धति भी ज्ञान के माध्यम का इस्तेमाल करती है। वहां तक पहुंचने के लिए, मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि आपके पास ज्ञान हो। और मेरा पूछना है कि क्या सचमुच ऐसा है? चोट पहुंचाये जाने का अनुभव ज्ञान है। पीड़ा की, क्लेश की, चोट पहुंचाने की समस्या के बारे में पारंपरिक पद्धति किस रीति से चलती है? परंपरा में यह क्यों प्रतिपादित किया गया है कि ज्ञान, मोक्ष के साधन के रूप में आवश्यक होता है?

अ. : वह तो अति-सरलीकरण है। पीड़ा का शब्दीकरण तो ज्ञान का केवल एक हिस्सा है। ज्ञान का एक अधिक विस्तृत क्षेत्र भी है जो कि समष्टिगत है। शब्द ज्ञान का साररूप है।

कृ. : क्या सचमुच ऐसा है?

ज. : जी नहीं, ऐसा नहीं है।

कृ. : अर्थात हमें यह देखना होगा कि ज्ञान क्या है, जानने का क्या मतलब है। जानना सक्रिय वर्तमान में होता है या अतीत में?

अ. : ज्ञान में अतीत की, अर्थात जिसे पहले जान लिया गया है, उसकी पूर्वमान्यता तो निहित ही है।

कृ. : परंपरा कहती है कि मुक्ति के लिए, निर्वाण के लिए ज्ञान अत्यावश्यक है। ऐसी पुष्टि क्यों की गई है? क्योंकि कुछ लोग ऐसे भी रहे होंगे जिन्होंने इस पर शंका उठाई होगी। गुरुओं के द्वारा, गीता के द्वारा, ज्ञान पर प्रश्न क्यों नहीं उठाए गए? उन्होंने यह क्यों नहीं देखा कि ज्ञान का मतलब है अतीत, और अतीत संभवतः मुक्ति नहीं ला सकता? परंपरावादियों ने यह क्यों नहीं देखा कि अनुशासन, साधना, सभी जानकारी से ही आए हैं?

ज. : क्या ऐसा इसलिए है कि उन्होंने यह महसूस किया कि स्मृति को बनाए रखना चाहिए?

कृ. : जब शास्त्रकार एक ओर स्व के निवारण के बारे में अनवरत बोल रहे थे तो दूसरी ओर वे यह क्यों नहीं देख पाए कि ज्ञान ही स्व है?

अ. : संप्रेषण जब तक शाब्दिक रहता है तब तक स्व का विसर्जन संभव नहीं।

कृ. : आपका आशय क्या यह है कि शास्त्रकारों के मतानुसार बिना शब्द को बीच में लाए, किसी वस्तु की तरफ देखा ही नहीं जा सकता?

अ. : शब्द स्वतः ही आ जाते हैं, इसमें मर्जी की कोई भूमिका नहीं।

कृ. : आप मुझे मारते हैं; पीड़ा होती हैं। मैं इसे देख रहा हूं। इसे स्मृति का रूप क्यों दिया जाए? आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं। शास्त्रकार इस तथ्य को क्यों नहीं देख पाए कि संचित ज्ञान मुक्ति तक कभी नहीं ले जा सकता?

अ. : उनमें से कुछ ने यह देखा।

कृ. : तो उन्होंने उस पर आचरण क्यों नहीं किया? शास्त्रकार आप हैं - यानी कि आपने परंपरा को छोड़ा नहीं है। आप उसे छोड़ क्यों नहीं पाते? व्यक्तिगत रूप से मैं एक बहुत सामान्य सा तथ्य देखता हूं - आप मुझे मारते हैं तथा पीड़ा घटित होती है। बस, इतना ही।

अ. : और सुख के बारे में?

कृ. : उस बारे में भी यही है।

अ. : सुख को त्यागने के लिए प्रयास करना पड़ता है।

कृ. : उस समय भी आप यही तमाशा करते हैं - उसे नाम दे देते हैं, जो इस जानकारी को दृढ़ करता है कि आपने मुझे मारा। वह एक तथ्य है। मेरा बेटा मर गया। यह तथ्य है। उद्विग्न होना, शोक करना और यह कहना कि मुझे उससे प्रेम था और वह चला गया - यह सब शब्दीकरण हुआ।

अ. : जब तक मन की बड़बड़ाहट खत्म न हो जाए।

कृ. : उसे बड़बड़ाने दें। देखिए, तथ्य एक चीज है और उसका वर्णन बिलकुल दूसरी चीज; हम वर्णनों में, व्याख्याओं में अटके हैं, तथ्यों पर ध्यान नहीं दे रहे। आखिर ऐसा क्यों होता है?

जब घर में आग लग जाती है तो मैं कुछ-न-कुछ ज़रूर करता हूं जो स्वाभाविक भी है। जब आपने मुझे मारा तब क्या क्रिया होती है? वहां पूर्णतः निष्क्रियता है, जिसका अर्थ है शब्दीकरण का निषेध।

अ. : ऐसा मेरे साथ तब हुआ जब मेरे भाई की मृत्यु हुई थी।

कृ. : उस स्थिति में क्या होता है? आप जानकारी में क्यों अटक जाते हैं और इसे असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण क्यों बना लेते हैं? तर्क करने की, बहस करने की क्षमता असाधारण महत्त्व की क्यों हो जाती है? अब तो उस काम को कंप्यूटर करने लगे हैं। शास्त्रकार इस जाल में क्यों फंसते रहे हैं?

इसलिए, क्या यह संभव है कि मस्तिष्क की कोशिकाएं जो समय के माध्यम से जानकारी के रूप में निर्मित हैं, जब आवश्यक हो, केवल तभी जानकारी के जरिये अपना कार्य करें अन्यथा ज्ञात से सर्वथा मुक्त रहें?

अ. : जब मुझे सुख महसूस होता है, तो कहता हूं: अहा, यह कितना अद्भुत है! मैं सुख को नहीं छोड़ता।

कृ. : मैं किसी ऐसे अवसर से गुजरा जिसने मुझे सुख प्रदान किया। फिर विचार का आगमन होता है, जो कहता है मुझे इसका दुहराया जाना अच्छा लगेगा। शुरुआत ऐसे होती है : वह अवसर प्राप्त होना, स्मृति, विचार के रूप में स्मृति की प्रतिक्रिया होना, विचार द्वारा प्रतिमा को निर्मित किया जाना, प्रतिमाओं की मांग जारी होना। यह सब परंपरा का ही हिस्सा है, जो बीत गए कल को आने वाले कल में ढोते रहना है।

अ. : आह्लाद, आनंद भी तो होता है।

कृ. : आप ज्यों ही प्रसन्नता को सुख में बदलते हैं, वह जा चुका होता है।

अ. : क्या सुख और दुख के अलावा भी कुछ है ज्ञान में?

कृ. : जब तक हम सुख, दुख तथा ज्ञान को नहीं समझ लेते तब तक इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। शास्त्र-नियंता दृष्टिहीन रहे हैं और उन्होंने लाखों लोगों को दृष्टि से वंचित किया है। इसकी विकरालता स्तब्ध करने वाली है। यह देश हो या ईसाई दुनिया, सारे एक जैसे हैं।

इसके बाद ये प्रश्न उठते हैं : क्या मस्तिष्क प्रतिष्ठा, हैसियत तथा इस प्रकार की चीजों के माध्यम से प्राप्त किए जाने वाले सुखतत्त्व को बीच में लाए बिना भी, एक स्तर पर निर्भ्रांत ज्ञान के साथ और पूर्ण वस्तुपरक होते हुए अपना कार्य करता रह सकता है, बिना सुख के सिद्धांत को बीच में लाए - सुख जो प्रतिष्ठा, हैसियत और उस सब से हासिल होता है? और क्या मस्तिष्क को यह बोध भी हो सकता है कि मुक्ति जानकारी के दायरे में नहीं होती? यह बोध ही मुक्ति है। यह किस प्रकार घटित होता है?

अ. : एक मुद्दा यह भी है : जब विचार मरने की लालसा करता है तो यह बना ही रहता है।

कृ. : इस प्रश्न पर सिद्धांतशास्त्री का क्या उत्तर होगा? विचार हमारा पीछा क्यों करता रहता है?

अ. : मैं समाधि में जाता तो हूं। किन्तु फिर लौटता भी हूं।

कृ. : उसका कोई मतलब नहीं है। क्या मस्तिष्क की कोशिकाएं अपने-आपको जानकारी-संग्रह के पात्र के रूप में देखती हैं? बाहर से थोपी गई समझ के कारण नहीं, बल्कि क्या वे स्वयं ही यह देख पाती हैं कि सुखतत्त्व के कार्यरत होते ही गड़बड़ी शुरू हो जाती है? इसके बाद ही भय, हिंसा, आक्रामकता आदि सब कुछ शुरू हो जाता है।

अ. : जानकारी का क्षेत्र जब सुख तथा पीड़ा से विरूपित होने लगता है तो गड़बड़ी शुरू हो जाती है।

कृ. : परंपरावादी, शास्त्र-निर्माता, शास्त्र तथा आध्यात्मिक नेता इस बात को क्यों नहीं देख पाए? कहीं ऐसा इसलिए तो नहीं था कि उनकी दृष्टि में अधिसत्ता जबर्दस्त महत्त्व की चीज थी - गीता की अधिसत्ता, शास्त्रों का प्रामाण्य आदि? क्योंकि मनुष्य इसी सबका परिणाम है। इसीलिए आपके सामने ऐसे लोग होते हैं जो कहते हैं, ''मैंने

गीता पढ़ी है, मुझे इस पर अधिकार प्राप्त है''। किस पर अधिकार प्राप्त है? किसी अन्य व्यक्ति के शब्दों पर, किसी दूसरे व्यक्ति के ज्ञान पर?

अ. : विभिन्न परंपराओं से जुड़े बिना भी यह संभव है कि हम उन्हें जान सकें। परंपरा की जानकारी होने से आपमें एक खास स्पष्टता तो आती ही है। हमें यह मालूम हो जाता है कि शास्त्रकारों ने किस तरह का काम किया और आप किस प्रकार से कार्य करते हैं। आप कहते हैं कि ज्ञान पूरी तरह अतीत का होता है।

कृ. : ज़ाहिर है; यदि मैं किसी खंभे से बंधा हूं तो घूम-फिर नहीं सकता।

अ. : फिर शास्त्रकारों को यह बात क्यों नजर नहीं आई?

कृ. : उन्हें सत्ता की तलाश थी।

अ. : आप समझ नहीं रहे। आप कहते हैं कि वे सत्ता चाहते थे लेकिन बात ऐसी नहीं है।

कृ. : देखिए, हर व्यक्ति के भीतर क्या चल रहा है? हम क्षण-भर के लिए तो किसी बात को अत्यंत स्पष्टतापूर्वक देखते हैं और यह बोध जानकारी के रूप में अनुभव में अनूदित हो जाता है। यही बात है। मैंने इसे देखा है। यह गुज़र चुका। अब इसे अपने साथ लादे रखना ज़रूरी नहीं। अगले क्षण मैं अवलोकन कर रहा होता हूं।

अ. : अवलोकनकर्ता कौन होता है?

कृ. : देखिए, मस्तिष्क यह आग्रह क्यों करता है कि ज्ञान में सातत्य हो? यह जोड़-बाकी, गुणा-भाग आदि क्यों करने लगता है? वह बहुत दयालु थी; कल मैंने यह किया था, यह सब क्यों चलता रहता है?

सर, देखिए, यदि मस्तिष्क पूर्णतः सुरक्षित न हो तो यह स्वस्थ रीति से, निर्दोष ढंग से अपना कार्य नहीं कर पाता। सुरक्षा का मतलब है व्यवस्था। व्यवस्था के अभाव में मस्तिष्क अपना कार्य नहीं कर सकता, यह मानो रुग्णता का शिकार हो जाता है। किसी बच्चे की तरह, यह पूर्ण सुरक्षा चाहता है। बच्चा जब सुरक्षित होता है, सुकून महसूस करता है, तब वह भयभीत नहीं होता। तब वह बड़ा होकर बहुत ही अच्छा इंसान बनता है। तो मस्तिष्क को सुरक्षा की आवश्यकता होती है, और उसने वह सुरक्षा ज्ञान में खोज निकाली है। बस वही एक ऐसी चीज होती है जिसमें वह सुरक्षित महसूस करता है : जानकारी रूपी अनुभव में, जो उसके लिए भावी मार्गदर्शन की तरह काम करने लगता है। मस्तिष्क सुरक्षा की ज़रूरत महसूस करते हुए उसे ज्ञान में, विश्वास में, परिवार आदि में खोज लेता है।

अ. : परंपरावादी ज्ञान के माध्यम से वह सुरक्षा उपलब्ध कराते हैं।

कृ. : मन सुरक्षा चाहता है। यदि शास्त्रकारों ने यह कहा होता : 'मैं सच में नहीं जानता' तो वे शास्त्रकार नहीं रह जाते।

अ. : और फिर भी किसी स्तर तक सुरक्षा अनिवार्य होती है।

कृ. : गीता, बाइबल, गुरु - इन सबको नकारा जाना ज़रूरी है। विचार द्वारा बनाए गए सभी ढांचों का निषेध किया जाना आवश्यक है। ज़रूरत उस सबको पोंछ डालने और यह कहने की है : मैं नहीं जानता, मैं कतई, कुछ भी नहीं जानता। यह

कहना होगा, मैं ऐसा कुछ नहीं कहूंगा जो मैं नहीं जानता, किसी दूसरे द्वारा कही गई कोई बात मैं नहीं दोहराऊंगा। तब आप शुरुआत करते हैं।

मद्रास ४ जनवरी १९७१

ट्रेडिशन एंड रेवोलूशन

अनुवाद : विनय वैद्य, शक्ति कुमार